विवेकानन्द का समाजशास्त्र

सत्यनारायण प्रसाद*

विवेकानन्द समाजशास्त्री के रूप में–स्वामी जी ने अपनी शक्ति, ज्ञान, चिंतन और आध्यात्मिक अनुभूति परिपक्व दार्शनिक अन्वेषण में लगा दी। वे निश्चय ही यह चाहते थे कि भौतिकवादी पश्चिम, योग तथा वेदान्त की आध्यात्मिक शिक्षाओं को हृदयंगम करे। उनकी यह कामना थी कि पश्चिम के लोग अन्तर्दर्शी तथा आत्मगत मनोविज्ञान का अभ्यास करें। किन्तु अपने देशवासियों को उन्होंने यथार्थ वाद तथा व्यवहारवाद का सन्देश किया। उन्होंने भारत तथा पश्चिम के पर्यटन के दौरान अनुभव किया कि जो देश एक हजार वर्ष से भी अधिक समय से दुःख निराशा और राजनीतिक विपदाओं का शिकार रहा है उसे अपनी कमर सीधी करने के लिए शक्ति और निर्भीकता की आवश्यकता है। वे भारत के करोड़ों लोगों के दुःखों के सम्बन्ध में अत्यधिक जागरूक थे। एक संन्यासी के मुख से निसृत ये शब्द सचमुच क्रान्तिकारी है। भुखमरी से पीड़ित मनुष्य को धर्म का उपदेश देना कोरा उपहास है।'' एक वेदान्ती की लेखनी से निकला हुआ यह कथन भी क्रान्तिकारी है कि ''भारत वह देश है जहाँ दसियों लाख लोग महुआ का फूल खाकर रहते हैं और दस या बीस लाख साधू तथा एक करोड़ के लगभग ब्राह्मण इन लोगों का रक्त चूसते हैं।'' अतः स्पष्ट है कि हिन्दुओं के आध्यात्मिक तत्वशास्त्र की श्रेष्ठता का शक्तिशाली समर्थक जनता के उद्धार के विषय में किसी प्रकार से झुकने के लिए तैयार नहीं था, क्योंकि राष्ट्र झोपड़ियों में रहता है।

स्वामी जी के अनुसार जनता ही देश का मेरुदण्ड होती है, क्योंकि वही सम्पूर्ण धन और भोजन उत्पन्न करती है।[1] अतः जब उसे अस्वीकार और अपमानित किया जाता है तो वह राष्ट्रीय शक्ति के विकास में योग कैसे दे सकती है। स्वामीजी का कहना था कि देश के जीर्णोद्धार के लिए आवश्यक है कि जनता के उत्थान के लिए भावनात्मक तथा रचनात्मक उपाय किये जायें। देश के करोड़ों लोगों की पुजारियों की पोपलीला, दरिद्रता, अत्याचार तथा अज्ञान से रक्षा करनी है। विवेकानन्द जानते थे कि यह समस्या बड़ी विकट थी और उसके समाधान के लिए आवश्यक था कि शिक्षित भारतीय बलिदान करें। अतः उन्होंने घोषणा की ''मैं

***ग्राम+पो0–नरसण्डा थाना–चंडी (नालंदा)**

उस हर व्यक्ति को देशद्रोही ठहराता हूं जो उनके खर्च पर शिक्षा प्राप्त करके उनकी ओर तनिक भी ध्यान नहीं देता।'' विवेकानन्द ने भारतीय समाज के उच्च वर्गों की कुटिलता, अहंकार और धूर्तता की निर्मम भर्त्सना की। भारतीय इतिहास के सभी युगों में ये उच्च वर्ग देश के करोड़ों निवासियों का शोषण करते आये हैं। उन्नीसवीं शताब्दी में वे ब्रिटिश साम्राज्यवाद के साथ सहयोग करने लगे और विदेशी राजनीतिक तथा आर्थिक व्यवस्था की नींव मजबूत करने लगे, क्योंकि वह व्यवस्था उन्हें अपने कम भाग्यशाली बन्धुओं का उत्पीड़त करने की छूट देती थी।

विवेकानन्द भारत के पहले विचारक थे जिन्होंने इतिहास की समाजशास्त्रीय दृष्टि से यथार्थवादी व्याख्या की। उन्होंने राजनीतिक उथल–पुथल के प्रलयकारी विप्लवों के मूल में सामाजिक संघर्षों का निरन्तर सूत्र ढूंढ़ निकाला। विवेकानन्द ने अपने लेख 'मॉडर्न इण्डिया' में शासक वर्ग तथा सामान्य जनता के बीच संघर्ष का उल्लेख किया हैः 'इतिहास प्रमाणित करता है कि प्रत्येक समाज किसी समय परिपक्व अवस्था को प्राप्त होता है तब उसके अन्तर्गत शासक शक्ति तथा सामान्य जनता के बीच संघर्ष छिड़ जाता है। समाज का जीवन, उसका प्रसार तथा सभ्यता इस संघर्ष में उसकी विजय अथवा पराजय पर निर्भर होते हैं। समाज में क्रांति करने वाले ऐसे परिवर्तन भारत में बार–बार होते आये हैं, केवल इस देश में वे धर्म के नाम पर हुए हैं, क्योंकि धर्म भारत का जीवन है, धर्म देश की भाषा है, उसकी समस्त गतिविधियों का प्रतीत है। चार्वाक, जैन, बौद्ध, शंकर रामानुज, कबीर, नानक, चैतन्य ब्रह्म समाज, आर्य समाज– ये सब तथा इसी प्रकार के अन्य पन्थ, धर्म की लहर उफनती गरजती उमड़ती हुई आगे बढ़ती है, और पीछे–पीछे सामाजिक आवश्यकताओं की पूर्ति होती रहती है।[2] उन्होंने भारतीय की जो व्याख्या की वह स्वरूप में अंशतः मार्क्सवादी भी है, किन्तु वह उनके अपने ढंग की मार्क्सवादी है। ऐसा कोई प्रमाण नहीं है कि उन्होंने 'दि कैपिटल' (पूंजी) अथवा दि कम्युनिस्ट मैनिफेस्टो' (साम्यवादी घोषणा) पढ़ी थी। उनके अनुसार प्राचीन भारत में राजशक्ति तथा ब्रह्मशक्ति के बीच संघर्ष चला करता था। बौद्ध धर्म क्षत्रियों का विद्रोह था, उसके कारण पुरोहितों की शक्ति का ह्रास और राजशक्ति का उत्कर्ष हुआ। आगे चलकर कुमारिल, शंकर और रामानुज ने पुरोहित शक्ति के उत्कर्ष का प्रयत्न किया। ब्राह्मण पुरोहितों ने मध्ययुगीन राजपूती सामन्तवाद से मेल करके अपनी शक्ति को कायम रखने की भी चेष्टा की। किन्तु मुस्लिम शक्ति की प्रगति के कारण पुरोहित वर्ग के उत्कर्ष की सम्पूर्ण आशाएं ध्वस्त हो गयी। और न पुरोहित लोग विदेशी ब्रिटिश शासन के अन्तर्गत ही अपनी शक्ति के पुनरूत्थान का स्वप्न देख सकते थे। भारतीय इतिहास की यह समाजशास्त्रीय व्याख्या अंशतः मार्क्सवादी है और अंशतः विल्फैडो पेरेटो के सिद्धान्त से मिलती–जुलती है। यह

मार्क्सवादी इस अर्थ में है कि ब्राह्मण तथा क्षत्रिय निरन्तर जनता के शोषण में लगे रहे। दलित वर्गों के शोषण की धारणा मार्क्सवादी है। पेरेटो के इस कथन से कि इतिहास अभिजात वर्गों का कब्रिस्तान है विवेकानंद के इन शब्दों की तुलना करने पर कि,..... ब्राह्मण जाति प्रकृति के अकाट्य नियमों का अनुसरण करती हुई अपने हाथों से अपनी समाधि का निर्माण कर रही है। यह अच्छा और उचित है कि उच्च वंश की हर जाति और विशेषाधिकार प्राप्त अभिजात वर्ग अपने हाथों अपनी चिता को तैयार करना अपना मुख्य कर्तव्य बनाये।[3] इससे स्पष्ट होता है कि विवेकानन्द का सिद्धान्त पेरेटो की धारणा से इस अर्थ में मिलता जुलता है कि उन्होंने शोषक वर्गों के बीच संघर्ष की धारणा का प्रतिपादन किया जिसे पेरेटो की भाषा में विशिष्ट वर्ग का चक्रावर्तन कहते हैं। इसी प्रकार ब्राह्मणों और क्षत्रियों के बीच निरन्तर संघर्षों की प्रवृति है।

एक बार स्वामी जी ने घोषणा की थी, ''मैं इसलिए समाजवादी नहीं हूँ कि वह पूर्ण व्यवस्था है, बल्कि इसलिए कि आधी रोटी न कुछ से अच्छी है।''[4] विवेकानन्द को दो अर्थों में समाजवादी कहा जा सकता है। प्रथम इसलिए कि उनमें यह समझने की ऐतिहासिक दृष्टि थी कि भारतीय इतिहास में दो उच्च जातियों–ब्राह्मणों तथा क्षत्रियों ने गरीब जनता का आर्थिक तथा राजनीतिक शोषण किया और ब्राह्मणों ने उसे नवीन तथा जटिल धार्मिक क्रियाकलाप और अनुष्ठानों के बन्धन में जकड़ कर रखा। उन्होंने खुले तौर पर जातिगत उत्पीड़न की भर्त्सना की और आत्मा तथा ब्रह्म में आस्था रखने के नाते मनुष्य तथा मनुष्य के बीच सामाजिक बन्धनों को अस्वीकार किया।

मार्क्स की व्यवस्था में औद्योगिक तथा अर्थतंत्र जो कि व्यवस्था का निचला ढांचा है राजनीति के ऊपरी ढाँचे की तुलना में अधिक महत्वपूर्ण है। एक अर्थ में उन्हें राजनीतिक परिस्थितियों का निर्णायक माना जाता है। मार्क्स पूंजी के महत्त्व को भली भाँति समझता था। किन्तु विवेकानन्द संन्यासी थे और उनका लक्ष्य काम और कंचन पर विजय प्राप्त करना था इसलिए उन्होंने धन के सामाजिक तथा आर्थिक–मूल्य की तथा ऐतिहासिक क्रियाकलाप के आर्थिक कारणों को उतना महत्व नहीं दिया जितना कि आर्थिक नियतिवादी तथा ऐतिहासिक भौतिकवादी देते हैं। किन्तु पश्चिम से लौटने के बाद वे सामाजिक संगठन के महत्व को समझने लगे और कहा करते थे कि यदि मैं तीन करोड़ रूपया एकत्र कर सकूं तो भारतीय जनता का उद्धार किया जा सकता है। भौतिकवादी पश्चिम के अनुभवों ने इस निर्विकल्प समाधि के साधक के समक्ष भी भुखमरी तथा दरिद्रता को जीतने की मांग के महत्व को स्पष्ट कर दिया। एक बार उन्होंने लिखा था, ''दरिद्रों के लिए कार्य उत्पन्न करने हेतु भौतिक सभ्यता अपितु विलासित भी आवश्यक है। रोटी!

रोटी मुझे उस ईश्वर में विश्वास नहीं है जो मुझे यहाँ रोटी नहीं दे सकता और स्वर्ग में शाश्वत आनन्द देता है। भारत को उठाना है, गरीबों को भोजन देना है, शिक्षा का प्रसार करना है पोपलीला का अन्त[5] करना है। पोपलीला का नाश हो, सामाजिक अत्याचार का नाश हो। अधिक रोटी प्रत्येक के अधिक अवसर।[6] मार्क्स ने आने वाली सामाजिक क्रान्ति की सफलता के लिए सर्वहारा के संगठित दल की आवश्यकता पर बल दिया। इसके विपरीत विवेकानन्द भारत में सामाजिक उद्धार के लिए व्यक्तिगत कार्यकर्ताओं को प्रशिक्षित करना चाहते थे। उनकी मानवतावादी आचारनीति तथा काम्त के ढंग की व्यावहारिक अभिरूचि इस बात से प्रकट होती है कि उन्होंने संन्यासी आश्रम के एकान्त प्रिय, व्यक्तिवादी तथा ध्यानोन्मुखी सदस्यों को एक परोपकारी संस्था के रूप में संगठित करके क्रियाशील बना दिया। किन्तु मार्क्स के सिद्धान्तों के सम्बन्ध में एक बात उल्लेखनीय है। उनका स्वरूप एक ऐसे दर्शन का है जिसमें घृणा तिरस्कार और ईर्ष्या का प्राधान्य देखने को मिलता है मार्क्सवाद उस अर्थ में गम्भीर तथा तात्त्विक दर्शन नहीं है। जिसमें प्लेटोवाद वेदान्त बौद्ध, दर्शन अथवा हेगेलवाद है। उसका जन्म औद्योगिक क्रान्ति से उत्पन्न विक्षोभ तथा असामंजस्य संकुल परिस्थितियों में हुआ था। वह पूंजीवाद के अन्तर्विरोध को हिंसात्मक कार्यप्रणाली के द्वारा नष्ट कर देना चाहता है, किन्तु वह मनुष्य की गम्भीर समस्याओं का समाधान ढूंढने का प्रयत्न नहीं करता। इसके विपरीत विवेकानन्द के समाजशास्त्र का मूल आध्यात्मिकता है। उसमें चरित्र की शूद्धता तथा भ्रातृत्व पर अधिक बल दिया गया है इस प्रकार न्याय, प्रेम तथा सार्वभौम करूणा के शाश्वत सन्देश का ही पुनः प्रतिपादन है।[7]

संदर्भ सूची :

1. विवेकानन्द, कॉम्पलीट वर्क्स, जिल्द 5 पृ.45
2. विवेकानन्द, मॉडर्न इण्डिया, कम्पलीट वर्क्स, जिल्द 4, पृ.394–395
3. वही, पृ.391
4. कम्पलीट वर्क्स, जिल्द 6, पृ.389
5. वर्मा, वी.पी.: क्रीटीक आफ माक्सियन सोशियोलौजी द कलकत्ता रिव्यू, मार्च–जून 1955
6. वर्मा, वी.पी का लेखः विवेकानन्द एण्ड मार्क्स ऐज सोशिलाजिस्ट 6 वेदांत, केसरी मद्रास जनवरी 1959, पृ.479–81 से उदृत
7. जोसेफ एम. मोरान तथा अन्य : इंट्रोडक्शन टू इनवायरनमेंटल साइंस, डब्ल्यू.एच. फ्रीमैन एण्ड कम्पनी, सैन फ्रांसिसको।